हिन्दी का साहित्येतिहास लेखन और साहित्य सर्वेक्षण

बीज शब्द : साहित्य इतिहास, हिन्दी का लेखन, साहित्य सर्वेक्षण।

ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net

A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research

शोध संचयन

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास लेखन की चुनौतियाँ भिन्न थी। हिन्दी के अधिकांश प्रारम्भिक इतिहासकारों ने प्राय: वृत्त संग्रहों का निर्माण किया। आचार्य शुक्ल ने पहली बार संम्पूर्ण रचनाकारों का नाम परिगणन समाविष्ट न करने का प्रयास किया। वर्गान्तरित करने की कोशिश की हिन्दी के इतिहास ग्रन्थों में साहित्य इतिहासकारों की मौलिकता प्राय: सदी के पूर्वार्द्ध तक दिखती है। सदी का उत्तरार्द्ध, प्रकाशन की प्रचुरता और वैविंय के कारण बदले माहौल की सूचना देता है। इस अवधि के साहित्य इतिहास लेखन के परम्परागत मानदण्ड छोटे दिखाई देते हैं। सदी के उत्तरार्द्ध के साहित्य इतिहास लेखन के लिए वैज्ञानिक सर्वेक्षण की उपादेयता उपयुक्त प्रतीत होती है। इस शोध आलेख में सदी के अन्तिम दशको के साहित्य इतिहास लेखन की समस्याओं एवं चुनौतियों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफे.
डॉ. विभा सिंह
एसोसिएट प्रोफे.
हिन्दी विभाग,
डी.ए-वी कॉलेज कानपुर।

साहित्येतिहास के अध्ययन की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही देखी जा सकती है, किन्तु इस अध्ययन की परिपाटी, काल विशेष के समग्र साहित्य को लेकर चलने की बजाए विधिमूलक या विशेष संदर्भ मूलक हो गयी है। रचना और प्रकाशन का नया परिवेश और पठन-पाठन व अभिव्यक्ति में नवाचारों के नए संस्कृति के दौर में साहित्य बहुआयामी हुआ है। अनुवाद सूचना प्रौद्योगिकी एवं जनमाध्यमों की अप्रतिम संभावना के साकार होने से विगत सदी के साहित्य का विश्व साहित्य से साक्षात्कार हुआ है, साथ ही उसमें हस्तक्षेप करने की स्थिति भी बनी है। इन कारणों से अद्यतन साहित्य का परिवेश विगत तीन-चार दशकों के वातावरण से पूर्णतया पृथक हो चुका है।

साहित्येतिहास लेखन अत्यन्त संवेदनशील और कठिनाईयों भरा कार्य है। आवश्यकता है सम्यक् इतिहास दृष्टि से रचनाओं और रचनात्मक गतिविधियों का संकलन-सर्वेक्षण किया जाए, जो न केवल अपने देश-काल को प्रभावित करे, बल्कि साहित्यकी भावी विकास यात्रा का पाथेय बने।

हिन्दी का प्रारम्भिक साहित्यिक लेखन-

पूर्व की सदी के साहित्य इतिहासकारों के समक्ष मूल समस्या हिन्दी की अपनी साहित्यिक परंपरा के स्रोत का अन्वेषण करना था। अत: उनकी मौलिकता हिन्दी की अपनी रचनाओं की गवेषणा और प्रतियों की सत्यता, प्रक्षेपों से अलगाव, युग प्रवृत्तियों के संदर्भ में उनका मूल्यांकन, रचना और रचनारूप के परंपरा और उत्स का अन्वेषण, रचना और रचनाकार का साहित्य यात्रा में अवदान के मूल्यांकन में थी अब तक के हिन्दी का साहित्येतिहास, साहित्य प्रवृत्तियों का इतिहास है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास लेखन की चुनौतियाँ भिन्न थी। हिन्दी के अधिकांश प्रारम्भिक इतिहासकारों ने प्राय: वृत्त संग्रहों का निर्माण किया। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी हिन्दी साहित्येतिहास के प्रथम लेखक थे। तासी का 'इस्तवार द ला लिटरेत्यूर ऐंदुई ऐंदुस्तानी' उस समय के रचनाकारों का वृत्त संग्रह मात्र था। आयरलैण्ड मूल के डॉ0 जार्ज ग्रियर्सन 1886 ई0 में आस्ट्रिया के वियना नगर में हुए यूरोपीय प्राच्य विद्या की अन्तर्राष्ट्रीय सभा के अधिवेशन में भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। जहाँ 'हिन्दुस्तान का मध्यकालीन भाषा साहित्य, विशेषकर तुलसी' शीर्षक निबन्ध पढ़ा। इस निबन्ध में प्रयुक्त संदर्भों को विस्तारित करते हुए दो वर्ष बाद उन्होंने अंग्रेजी में 'द मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' शीर्षक से हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास प्रस्तुत किया। 'द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुतान' 1888 ई0 में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल के

विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ जो अगले वर्ष स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में छपा। तासी की रचना काल क्रमानुसार न होकर 'वर्णानुक्रम से है और इतिहास के लिए काल क्रमानुसार होना पहली शर्त है। वर्णानुक्रम का अनुसरण ग्रन्थ को कवि को बना देता है और इतिहास के पद से च्युत कर देता है। यद्यपि इसे नलिन विलोचन शर्मा हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास मानते हुए गार्सा द तासी को हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास लेखक कहते हैं, तो भी विभिन्न विद्वानों के बीच यह साहित्य ग्रन्थ है या नहीं, चर्चा का विषय अनवरत बना रहा।

सन् 1848 ई0 में देहली कॉलेज द्वारा प्रकाशित मौलवी करीमुद्दीन का 'तबकातुश्शुअरा' या 'तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिन्दी' नामक एक ग्रन्थ हिन्दी के साहित्य इतिहास लेखन का अन्य प्रयास था। 'जिस प्रकार तासी को इतिहास का बोध तो था, पर अपूर्ण सूचनाओं के कारण वे अपने तथाकथित इतिहास ग्रंथ को इतिहास का रूप नहीं दे सके, उसी प्रकार करीमुद्दीन को भी इतिहास का बोध था, पर ये भी अपने ग्रन्थ को इतिहास का ठीक रूप नहीं दे सकें। करीमुद्दीन के इतिहास ग्रन्थ में कवियों के वर्गीकरण आदि में जन्म-मरण के संवतों, व्यक्तिगत जीवन के विवरण और उनकी रचनाओं के नामोल्लेख का अभाव था। डॉ0 रामचन्द्र तिवारी के अनुसार 'उनका तज़किरा एक भारतीय द्वारा लिखित हिन्दी और उर्दू साहित्य का प्रथम इतिहास है। वस्तुत: करीमुद्दीन का यह तजकिरा 'केवल जिक्र (चर्चा) है, इतिहास नहीं।' सन् 1878 ई0 में साहित्य में विशेषरुचि रखने वाले पुलिस के सर्किल इन्सपेक्टर शिव सिंह सेंगर ने 838 कवियों की रचनाओं को आधार बनाते हुए शिव सिंह सरोज लिखा। वर्णानुसार कवियों का दिया जाना यह सिद्ध करता है कि यह शुद्ध इतिहास ग्रंथ नहीं हैं।

पं0 गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र अर्थात् मिश्र बंधुओं ने 1913 ई0 में तीन भागों में हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास 'मिश्र बंधु विनोद' प्रकाशित कराया। इसका चौथा भाग 1934 ई0 में प्रकाशित हुआ। नि:सन्देह रचनाओं के एवं रचनाकारों के अनुशीलन में प्रामाणिकता को आधार बनाकर इनसे इतिहास अध्ययन की परिपाटी प्रारम्भ हुई।

नलिन विलोचन शर्मा जी के अनुसार 'मिश्र बंधु विनोद' एक साहित्येतिहास ग्रंन्थ नहीं है क्योंकि 'मिश्र बंधुओं ने उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चिमी साहित्य के इतिहास की उस प्रचलित प्रणाली पर ध्यान ही नहीं दिया, जिसे विीयवादी प्रणाली कहते हैं इसे अपनाने का सर्व प्रथम श्रेय शुक्ल जी को दिया जाता है, जिसका उन्हें गर्व भी है। इसी प्रकार पादरी एडविन ग्रिब्स का 1917 ई0 में 112 पृष्ठों का एक हिन्दी साहित्य का इतिहास ग्रंथ 'ए स्केच ऑफ हिन्दी लिटरेचर' और 1920 ई0 में पादरी एफ.ई.के.ई. का 116 पृष्ठ का इतिहास ग्रन्थ 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर' प्रकाशित हुआ। उक्त दोनों रचनाएँ भी हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा का पूर्ण पक्ष प्रस्तुत नहीं कर पाती। विषयवस्तु के विवेचन में कोई इतिहास दृष्टि ने होने के कारण इन्हें भी साहित्य इतिहास ग्रंथ की कोटि में नहीं रखा जा सकता। नि:सन्देह हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहासलेखन के प्रयास 'इतिहास' लेखन हैं या नहीं, इस संदर्भ से नहीं उबर पाए। पर इन प्रयासों में इतिहास लेखन की प्रारम्भिक चेष्टा फलीभूत होती दिखती है।

सन् 1928 में हिन्दी शब्द सागर लेखन की योजना पूर्ण हुई, इस शब्द सागर की भूमिका के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखा। 1940 ई0 में इसका परिवर्धित संशोधित रूप हिन्दी साहित्य के इतिहास के रूप में प्रस्तुत हुआ। इस इतिहास ग्रंथ में पहली बार साहित्येतिहास निर्माण की स्पष्ट सैद्धान्तिकी विकसित होती हुई दिखती है। किसी देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का अस्थायी प्रतिबिम्ब होता है, जो राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि कारणों से काल क्रम में परिवर्तनशील होती है। 'आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।' इन्होने इसी रूप में साहित्य इतिहास को परिभाशित करने की कोशिश की है। पहली बार आचार्य शुक्ल ने साहित्य और साहित्येतर का भेद करते हुए साहित्य सामग्री को अपने साहित्येतिहास का विषयबनाया, सिद्धों और योगियों की रचनाओं को साहित्येतर बताते हुए उन्हें साहित्य की ध्रा से अलग किया। आचार्य शुक्ल का इतिहास हिन्दी के साहित्येतिहास लेखन का वह प्रस्थान बिंदु है जिसके प्रभाव से कालान्तर के इतिहास लेखक बच न सके। आचार्य शुक्ल के द्वारा स्थापित मान्यताएँ आगे के सभी इतिहास लेखकों की प्रमुख भावभूमि बनध

नि:संदेह हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक इतिहास लेखकों की प्रमुख चिंता उपलब्ध साहित्य सूचनाओं और साहित्य सामग्री की प्रामाणिकता का परीक्षण करते हुए उसे विन्यस्त और समाकलित (Integrate) करने का था। साहित्य सामग्री का संकलन (Collection of Information) और उन रचनाओं के अंत:सूत्र तलाश कर उस समग्र साहित्य का समाकलन (Integration)करना उन साहित्येतिहासकारों के लिए प्रमुख चुनौती थी जिसके आधार पर तद्युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों और उसके आधार पर इस काल विशेषका नामकरण और लक्षण निर्धारित किया जा सके। विशेषकर हिन्दी के आदिकालीन साहित्य के अध्ययन एवं विकास प्रक्रिया को ठीक ढंग से समझने में प्रामाणिक पाठों की खोज और उसके साधन के रूप में पाठानुसंधान का साधन इनके लिए सर्वाधिक उपयोगी था।

जहाँ तक बीसवीं सदी के साहित्य की बात है, बीसवीं सदी के लगभग तीसरे दशक से स्वयं साहित्यकारों की इतिहास चेतना जाग्रत दिखती है। वे प्राय: साहित्य एवं समाज की केन्द्रीय ध्रा निर्मित करते हुए सामूहिक रूप से सजग दिखते हैं और साहित्यिक आन्दोलनों

के माध्यमों से साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व हुए दिखाई देते हैं।

वर्तमान साहित्येतिहास लेखन की चुनौतियाँ और समस्याएँ-

हिन्दी के इतिहास ग्रंथों में इतिहासकारों की मौलिकता प्राय: 1950 तक के साहित्येतिहास के लेखन में दिखती है। हिन्दी के प्रारंभिक युग के नामकरण और मूल प्रवृत्तियों के निर्धारण में कि यह आदिकाल है, वीरगाथा काल है, या चारणकाल है, आदि वृत्तांत इतिहासकारों के मौलिक उद्भावनाओं से भरे पड़े हैं। इसी प्रकार हिन्दी का भक्तिकालीन साहित्य, उसके प्रादुर्भाव के कारण कि यह बाहरी प्रभाव की देन है या पूर्णत: भारतीय परंपरा का विकास है, या रीतिकालीन साहित्य की सार्थकता की चर्चा, और भारतीय पुनर्जागरण की चेतना का मूल्यांकन, छायावादी साहित्य की प्रवृत्तियों की चर्चा और उसके मूल्यांकन आदि के प्रसंग में इतिहासकारों के लिए जितने रोचक, मौलिक और विचारोत्तेजक उद्भावनाओं के अवसर दिखते हैं उतने 1950 के आगे के साहित्य में नहीं दिखते। यहाँ प्राय: इतिहासकार, सूचनाओं के संकलन कर्ता के रूप में नाम परिगणन और तथ्य संग्रह प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं। इन इतिहासकारों में इतिहास दृष्टि लगभग 1975 के आस-पास चुकती दिखाई देती है। इसके आगे का हिन्दी साहित्य लेखन इतना प्रचुर और वैविध्यपूर्ण हो जाता है कि सबके-सब इतिहासकार इतिहास लेखन की पुरानी भूमिका से अलग हटकर संकलनकर्त्ता की भूमिका में आ जाते हैं। इस अवधि के इतिहास लेखन में इतिहासकार की भूमिका इतिवृत्तनिरूपक रूप में उसी प्रकार हो जाती है जैसा कि हिन्दी साहित्य के गार्सा द तासी, जार्ज ग्रियसन, मिश्रबन्धु, शिव सिंह, मौलवी करीमुद्दीन जैसे प्रारंभिक इतिहास लेखकों में दिखती है।

सदी के अंतिम कालखण्ड में साहित्येतिहास की परंपरा में कुछ नए शब्द जुड़ते दिखाई देते हैं। आठवाँ, दशक, सातवाँ दशक, कहानी दशक, कविता दशक, अंतिम दशक, उत्तरशती, सदी का पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध आदि शीर्षकों से साहित्य इतिहास के अध्ययन की प्रणाली विकसित हुई है। अनेक इतिहास ग्रंथ एवं शोध ग्रंथ इन्हीं शीर्षकों से प्रकाशित हुए हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल तक कविता प्रमुख रही है तथा काल क्रमानुसार प्रवृत्तियों की स्पष्ट झलक मिलती है। भारतेन्दु युग में गद्य की अनेक विधाओं का निर्माण होता दिखता है तो भी कविता की प्रबलता रहती है। छायावाद से लेकर आगे कविता और कथा की समानांतर यात्रा है। 1975 तक कथा, साहित्य की केन्द्रीय विंके रूप में स्थापित हो जाती है। तदन्तर अनेक विंओं में श्रेष्ठ कृतियों का पदार्पण हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि बनती है। सदी के अंतिम दशकों में हिन्दी साहित्य की कौन सी विं और प्रवृत्ति साहित्य को दिशा देते हैं, युग का नेतृत्व या प्रतिनिधित्व करते हैं, इसका अनुसंधान, साहित्येतिहासकारों के लिए अहम् प्रश्न बना जाता है। किन्तु हम इसकी चर्चा साहित्येतिहास ग्रंथों में कम ही देखते हैं। सदी के अंतिम दशकों में आत्मकथा आदि समग्र साहित्य विमर्श की केन्द्रीय भूमिका में है। दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के सभी सशक्त रचनाकारों ने साहित्य जगत में अपनी अलग और विशेष पहचान आत्मकथाओं के माध्यम से बनायी है। इस अवधि में प्रकाशित आत्मकथाओं ने उन साहित्यिक सामाजिक प्रश्नों को खड़ा किया है जो आज के साहित्य को दिशा दे रहे हैं। इधर राजनीति के मुहावरे में व्यंग्य सर्वाधिक ताकतवर हथियार के रूप में उभरा है। आत्ममंथन और आत्मालोचन की यह प्रवृत्ति वर्तमान साहित्य का युगबोध है।

कहते हैं कुछ घटनाएँ न केवल वर्तमान और भविष्य को, बल्कि वे अपने भूतकाल को भी प्रभावित करती हैं। विगत सदी के अंतिम दशकों में साहित्य में प्रादुर्भूत अस्मितामूलक प्रवृत्तियों यथा दलित विमर्श और स्त्री विमर्श ने विगत के साहित्येतिहासकारों पर प्रश्नचिह्न खड़ा करते हुए अपने को विगत के इतिहास प्रवाह में ढूढ़ना प्रारंभ कर दिया। साहित्येतिहास की परंपरा में दलित एवं स्त्री लेखकों का अभाव तथा सर्जनात्मक लेखकों में लंबे समय तक इनकी अनुपस्थिति नए प्रश्न खड़े करती है। दलित साहित्यकारों के छिटपुट प्रयत्न एवं 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' इस दिशा में बड़ी पहल प्रस्तुत करता है। 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' की संपादक इतिहासकार डॉ0 सुमन राजे अपने उक्त ग्रंथ के समर्पण में ही कहती हैं ''अनादिकाल से गा-गाकर रोती-हँसती उन स्त्रियों को जो साहित्य में भीतरी नदी की तरह बहती आयी हैं, चन्द्रावली, मधुरावली, लाची, भगवती आदि उन लोकनायिकाओं को, जो कण्ठ से कण्ठ में जीवित रही हैं: रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी, डॉ0 सत्येन्द्र जैसे पारखी, रसज्ञ, संग्राहकों को राजशेखर, राहुल सांकृत्यायन, ज्योतिप्रसाद निर्मल, चतुरसेन शास्त्री जैसे संवेदनशील विद्धानों को जिन्होंने सम्भावनाओं को पहचाना। नादी, दादी और माँ को जो घुट्टी की जगह गीत पिलाती रही। और उन नामवर आलोचकों को जो इस पूरी परम्परा से तटस्थ, उदासीन, विमुख और पूर्वाग्रही रहे, इस कथन के साथ कि, 'हम अपना खून तुम्हें माफ करते हैं पर, वे नहीं करेंगी जो आगे आएँगध्'' समकालीन नए साहित्येतिहासकारों को इन प्रश्नों का उत्तर देना ही होगा। डॉ0 सुमनराजे ने भारतीय स्त्री लेखन की परंपरा को अन्वेषित करते हुए उपरोक्त प्रश्नों, आक्षेपों का उत्तर देने की कोशिश की है, और उन कारणों को विश्लेषित किया है जो हिन्दी साहित्य की परंपरा में स्त्री लेखन की अनुपस्थिति के कारक रहे हैं।

सदी के अंतिम दशकों में केवल प्रकाशन की प्रचुरता ही नहीं है, बल्कि इसका अतिरेक भी हुआ है। केवल विधओं का विस्तार नहीं, बल्कि विधाओं की प्रस्तुति के माध्यमों का भी विस्तार हुआ है। जनमाध्यमों ने सृजनधर्मिता के अनन्त आयाम उद्घाटित किए हैं। अनेक जन माध्यम जहाँ 24 घंटे खुले हैं, खाली स्थान भरना है तो रचना चाहिए। प्रकाशक से एसाइनमेंट मिला तो रचना चाहिए।

फिर रचना का संबंध प्रोडक्शन से हो गया। अंतरताना (इन्टरनेट) पर अनंत पन्नों के तिरते रहने का भविष्य मानों लेखकों के लिए सिंहद्वार को खोल दिया हो। अन्तरताना पर तिरते पन्ने में शब्द के साथ दृश्य-श्रव्य की मात्र संभावना नहीं रही, बल्कि आवश्यकता बन गयी। ब्लॉग या चिट्ठा लेखन ने जब टूटपुँजिया साहित्यकारों को कलम की ताकत पकड़ा दी तो बड़े स्वनामधन्य लेखकों की क्या बात। बड़े लेखक तो अपने पोर्टल पर पूरी काया और लेखकीय माया के साथ हैं। लेखक-पाठक संवाद की कौन कहे यहाँ लेखक तो पाठकों की प्रतिक्रियाओं से लैस, फेसबुक, ट्वीटर, लिंक्ड इन जैसे अनेक नेटवर्किंग साइटों की मदद से भारी भरकम पाठकों की फौज और उसके लेखा-जोखा के साथ हैं। कलमकारों के लिए इन अवसरों की धमक विगत सदी के अंतिम दशक में साफ सुनी गयी। सूचना प्रौद्योगिकी एवं छापेखाने में प्रिंटिंग तकनीक के विकास से प्रकाशन का कार्य अत्यंत सुगम और आसान हो गया। कोरियर व्यवस्था और आवागमन के साधनों से प्रकाशनव्यवसाय का अत्यंत विस्तार हुआ। इस प्रकार संचार साधनों की सुलभता ने साहित्य प्रकाशन के अवसरों में अपार वृद्धि की है। भौगोलीकरण की प्रक्रिया में भाषा- संस्कृति एवं देश की अभेद्य दिवारें टूट गयीं। और आदान-प्रदान की संस्कृतिसे अन्य भाषाओं के साहित्य का हिन्दी के साथ अन्तरावलम्बन तेज हुआ। अन्य भाषा के साहित्य का अन्तर प्रभाव इस अवधि के हिन्दी साहित्य पर प्राय: देखा जा सकता है।

प्रारंभ में यह प्रभाव पश्चिमी साहित्य के सैद्धान्तिक स्वीकृति तक सीमित था, किन्तु आज के साहित्यिक-सांस्कृतिक अंतुर्गफन में इसकी धारा पश्चिमी साहित्य के साथ संश्लिष्ट है। दूसरे हिन्दी साहित्य भी विश्व साहित्य के निर्माण में यूरोपीय साहित्य के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने लगा है। वैश्वीकरण के कारण विभिन्न सभ्यताओं का परस्पर संतरण हो रहा है और पारंपरिक-सांस्कृतिक मूल्यों में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। यह परिवर्तन बहुस्तरीय और जटिल है। इन प्रभूत रचनाओं से प्रबलतम युग प्रतिनिधि रचना प्रवृत्ति को रंखांकित करना साहित्येतिहासकार के लिए बड़ी चुनौती है। बहुप्रकाशित रचनाओं से सार्थक रचनाओं की तलाश और उनका युक्ति-युक्त ढंग से मूल्यांकन करते हुए रचना-परंपरा के सूत्र में अनुस्यूत करना समकालीन इतिहासकार के समक्ष बड़ी समस्या है। यदि 20वीं सदी के अतिम दशकों की बात करें तो उस समय रचनात्मक लेखन करने वाले बड़े वर्ग के अतिरिक्त एक ऐसा भी वर्ग तैयार हुआ जो महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध है। उसमें अधिकांश लिख पढ़ रहे हैं, प्रकाशन की महत्ता से वे भली-भांति परिचित हैं। बड़े स्तर पर प्रकाशन कार्य चल रहा है। पूर्व में जहाँ प्रकाशकों का अभाव था, लेखक ही स्वयं के प्रयत्नों से प्रकाशक बन कर अपने और साथ वालों को प्रकाशित करते थे। वही आज विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के पुस्तकालयों में पुस्तक आपूर्ति करने वाले बड़ी संख्या में प्रकाशक उपलब्ध हैं। आशातीत प्रकाशन हो रहा है। इसमें युगबोध का नेतृत्व और प्रतिनिधित्व करने वाली सार्थक रचनाओं का 'अवकलन' या छांटना (Diffrenciation) जरूरी हो गया है। इतिवृत्तिकार या कोशकार से आगे बढ़कर इतिहासकार को अपने दायित्व का निर्वहन करना पड़ेगा। अवकलन अर्थात् रचना संकलन से अर्थवान और मौलिक रचनाओं का पृथक्करण करते हुए उनको अंत: सूत्र में पिरोना, अर्थात प्रारंभ में हिन्दी जगत की एक 'औसत प्रवृत्ति' को रेखांकित करना था वहीं, आज अर्थहीन बड़े प्रकाशन से अलग कर वास्तविक रूप से युग का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख रचना प्रवृत्ति का निर्धारण करना होगा। इस तथ्य की ओर विश्वम्भर मानव का ध्यान गया था। अपने साहित्य सर्वेक्षण ग्रंथ की अत्यंत संक्षिप्त प्रस्तावना में स्वयं उन्होंने लिखा था कि ''इतिहास ग्रंथों में सैकड़ों ऐसे नाम मिलते हैं, जिनके वहाँ होने का औचित्य नहीं है, जिन्हें समय ने मिला दिया है, जिनकी किसी के लिए उपयोगिता नहीं रही। फिर भी वहाँ वे बने हुए हैं, क्योंकि उन्होंने कुछ लिखा है। किस स्तर का लिखा है, इस पर कोई विचार नहीं करता। सब केवल एक मृत प्रथा का पालन किए चले जा रहे हैं। अत: भविष्य के आलोचकों से मेरा अनुरोध है कि वे समय की गति के साथ, किसी न्यायोचित आधार पर, लेखकों की इस संख्या को कम करें। उनके लिए नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी का 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' ही काफी है।"

यह कार्य विश्वम्भर मानव ने भविष्य के आलोचकों पर छोड़ दिया। यह समस्या वर्तमान इतिहास लेखक के लिए बड़ी है। इसका समाधान क्या होगा, इसका मार्ग स्वयं तलाशना है। प्रारंभिक इतिहासकारों ने जहाँ सूचनाओं से आगे बढ़कर मूल रचना की पाण्डुलिपि के तह तक जाने की कोशिश की, उसके आधार पर इतिहास को खंगालने की कोशिश की, वही, अब इतिहासकार को समास पद्धति की बजाय व्यास पद्धति का अनुसरण करना पड़ेगा। प्रारंभिक साहित्येतिहासकारों ने व्यावकलन (Differentiation) किया, रचनाओं से, रचनावृत्तों से अपने इतिहास सामग्री को छाँटा, किन्तु उसे छाँटने का आधार साहित्य और साहित्येतर प्रसंग था, प्रामाणिकता का संदर्भ था। इसी आधार पर आचार्य शुक्ल ने धर्म, योग आदि रचनाओं को साहित्य से स्थगित किया था। समग्रता में साहित्य की परंपरा का अवलोकन उनका मूल ध्येय था। आज का साहित्येतिहासकार इस ध्येय की प्राप्ति उसी रूप से नहीं कर सकता जैसा कि उन इतिहासकारों ने किया था। इतिहासकार के लिए अब निष्कर्ष देने के पूर्व एक वास्तविक सर्वेक्षण आवश्यक है। यह सर्वेक्षण ही आज के साहित्येतिहासकार का उपयुक्त मार्गदर्शन कर सकती है।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की जो परंपरा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से प्रारंभ हुयी वह आज भी किसी न किसी रूप में जारी है। देश के सामाजिक सर्वेक्षण के तारतम्य में विभिन्न युग के साहित्य

की पुनर्विवेचना कर आज भी नये-नये तथ्य प्रकाश में लाये जा रहे हैं। इस देश की वयनजीवी जातियों, नाथों, सिद्धों की परंपराओं से जोड़ते हुए कबीर के माध्यम से हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति की एक दूसरी परंपरा की खोज की।

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशक अभी शीघ्र ही बीते हैं। सच्चे अर्थों में यह कोई इतिहास की वस्तु नहीं है। अतएव इस अवधि के साहित्य का इतिहास लेखन तो नहीं हो सकता क्योंकि इस अवधि के सामाजिक राजनैतिक-सांस्कृतिक घटनाक्रम के परिणाम अभी बहुत कुछ आने शेष है। इस अवधि की कौन सी रचनाएँ काल-प्रवाह में इतिहास में दर्ज होगी, यह कहना मुश्किल है, इतिहास के रूप में उनका मूल्यांकन बेमानी होगा, अस्तु इस अवधि के साहित्य का सर्वेक्षण भर प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस संदर्भ में हमें कहना है कि लोकभारती प्रकाशन से विशम्भर नाथ 'मानव' ने भी हिन्दी साहित्य का सर्वेक्षण-1, -2 प्रकाशित किया था। उपर्युक्त सर्वेक्षण काव्य और गद्य के संदर्भ में था। कहने का आशय यह है कि साहित्य सर्वेक्षण का कार्य, विरल ही सही, पहले भी चलता रहा है और चलता रहेगा। 'साहित्य सृजन' के बुधवार 2 दिसम्बर 2009 ई0 के अंक में छपे रूपसिंह चंदेल का आलेख 'मेरी बात', में, रूप सिंह का आलेख है' साहित्यिक सर्वेक्षणों के मायने।' प्रस्ततु आलेख गद्य विधा के सर्वेक्षण से संबधित है वह भी कथा-साहित्य की, उपन्यास और कहानी से। वास्तव में यह उत्साहजनक स्थिति है जो सर्वेक्षण की दिशा में प्रकाश की तेज रेखा है भले ही आलेख रिव्यू कहने का आशय यह है कि साहित्य में सर्वेक्षण की धारा अब बड़ी प्रबल है।

साहित्येतिहास और सर्वेक्षण एक सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा सर्वेक्षण से ही हिन्दी साहित्य का साहित्येतिहास प्रारंभ होता है। प्रारंभिक साहित्येतिहास के प्रयास वास्तव में भाषा एवं साहित्य सर्वेक्षण के कार्य थे। सर्वेक्षण का कार्य समकालीन या सन्निकट विगत से संबंधित होता है। इतिहास हमें विगत में काफी पीछे तक ले जाता है। यदि हमारी इतिहास चेतना सन्निकट विगत के प्रति अनुसंधानरत होती है तो सर्वेक्षण हमारे लिए सर्वाधिक उपयुक्त साधन होता है, जिसके माध्यम से हम पूर्णतया वस्तुनिष्ठ निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं। दस्तावेज हमारे इतिहासकार के लिए एक साक्ष्य है। जीवंत समाज के लिए यह एक मात्र सत्य नहीं, क्योंकि दस्तावेज के अतिरिक्त और भी तथ्य होते हैं जो हमें सर्वेक्षण से ही मिल सकते हैं। यह अलग बात है कि सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्यों की पुष्टि हम दस्तावेजों से कर सकते हैं। सर्वेक्षण ऐसा साधन है जो विगत के कुछ सालों पीछे तक ही जा सकता है जब तक कि घटनाओं साक्ष्य, तथ्य या स्मृतियाँ जीवित हैं।

साहित्य प्रवृत्तियों और संवेदनाओं से सम्बद्ध है। साहित्य का इतिहास इन प्रवृत्तियों और संवेदनाओं का इतिहास है। प्रवृत्तियाँ और संवेदनाएँ जीवंत तथ्य हैं, ये समकालीन इतिहास में विगत के समाज की सच्ची और यथार्थ तस्वीर के लिए भौतिक तथ्यों का आश्रय लेते हैं। इसलिए पुरातात्विक अवशेष, सिक्के, वास्तु अवशेष आदि इनके प्राथमिक तथ्य हैं और उस काल का साहित्य द्वितीयक तथ्य। साहित्य और इतिहास, समाज के दो पक्ष हैं, साहित्येतिहास इन दोनों का सेतु है। काल प्रवाह में समाज को समझने के लिए साहित्येतिहास से प्रमुख दूसरा अन्य तत्व नहीं हो सकता। साहित्येतिहास को समाज के सापेक्ष व्याख्यायित होना है तो उसे समाज और साहित्य दोनों के अर्थ से दो-चार होना पड़ेगा तभी ही साहित्य समाज का दर्पण हो सकता है या कार्यकरण संबंधों में परिभाषित होकर समाज के आत्ममंथन का वास्तविक अस्त्र या कि समाज के आगे-आगे चलने वाला मशाल हो सकता है। साहित्य जब प्रभूत प्रकाशित हो रहा हो, उस समय सर्वाधिक उपयुक्त है कि उस साहित्य पर समेकित चर्चा हो जो समाज के अर्थ के विभिन्न स्तरों का प्रकट करने वाला सच्चा आईना हो सके, यही सच्चा साहित्येतिहास हो सकता है। विगत सदी के उत्तरार्द्ध के साहित्येतिहास लिखने से पूर्व यह आवश्यक है कि प्रभूत प्रकाशित सामग्री से जीवंत रचनाओं का अपवर्जन (Exclusion) किया जाए। इसके लिए सर्वेक्षण तरीका हो सकता है। साहित्येतिहासकार के लिए विगत दशकों की रचनाएँ प्रारंभिक स्रोत हैं, जबकि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी-चर्चाएँ द्वितीयक स्रोत।

विगत सदी के अंतिम समय में समय से संलाप करती रचनाओं के अनुसंधान के लिए सर्वेक्षण का वह तरीका सर्वाधिक उपयुक्त होगा जिसमें साहित्य के द्वितीयक स्रोतों को आधार बनाया जाए। अर्थात् अध्ययन सीमा को देखते हुए चर्चित कुछ प्रतिनिधि पत्र-पत्रिकाओं को अवगाहन किया जाए, आवश्यकता पड़ने पर प्राथमिक रचना स्रोतों का संदर्भ देखा जाए। इस अध्ययन के लिए इस अवधि के प्रकाशित उपलब्धि पत्रिकाओं तथा हंस, दस्तावेज, कथाबिंब, इण्डिया टुडे के वार्षिकांक एवं साहित्य सर्वेक्षणों को प्रतिनिधि रूप में चयनित किया गया है। यद्यपि अध्ययन की उपयुक्तता की दृष्टि से यह सूची और भी बड़ी हो सकती थी, तो भी अध्ययन की सीमा की वजह से कुछ साहित्य की सभी विधाओं और गतिविधियों से संबंधित कुछ प्रतिनिधि पत्रिकाओं को लेने की कोशिश की गयी है, जिसके सामान्य पाठक हैं और जिनकी प्रतियाँ उपलब्ध हो सकी हैं।

अलिखित गतिविधियाँ साहित्यिक चर्चा, वाद-विवाद साहित्य आदि सृजन का वातावरण निर्मित करते हैं। अत: साहित्येतिहास की सामग्री में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। साहित्येतिहास की दो आधार सामग्री होती है, प्रथम रचनाएँ, दूसरी साहित्यिक गतिविधियाँ और विचार विमर्श। दोनों के सन्तुलित प्रवाह में साहित्य की यात्रा अग्रसर होती है। अतएव साहित्येतिहास के लिए जितनी महत्त्वपूर्ण रचना की अभ्यंतर दुनिया है, उतना ही महत्त्वपूर्ण रचना के इतर का गतिशील संसार। साहित्य जो अपने युग और काल का प्रतिनिधित्व

करता है वह यथार्थ से परे नहीं होता है। वह स्वंय यथार्थ का दस्तावेज या कच्चा चिट्ठा न होते हुए भी युग सत्य के यथार्थ दस्तावेजों के कच्चे माल की निर्मिति होता है। यदि हम उत्पाद की गुणवत्ता पर विचार करेंगे तो कच्चेमाल के मूल्यांकन की उपेक्षा नहीं कर सकते। यही वजह है कि जब हम साहित्येतिहास की चर्चा करेंगे तो प्रथम चरण साहित्य सामग्री के सर्वेक्षण से प्रारंभ होता है। यह ऊपर से देखने पर हास्यास्पद लग सकता है कि जहाँ बहुलता में लिखा जा रहा हो वहाँ सर्वेक्षण की क्या जरूरत, संकलन करना ही पर्याप्त होगा, किन्तु यहाँ केवल संकलन से कार्य न होगा। संकलन में रचना और रचनाकारों की सूची ही हो सकेगी उसमें हम साहित्यिक घटनाओं-प्रतिघटनाओं का संकलन कर सकते हैं, किन्तु प्रश्न उस संकलन के विवेक से है, संकलन की दृष्टि क्या होगी? प्रकाशित कृतियों एवं साहित्यिक गतिविधियों से उन रचनाओं और गतिविधियों का सर्वेक्षण आवश्यक है जो अपने देश-काल का प्रतिनिधित्व करती है और उनकी सीमा का अतिक्रमण करते हुए भावी साहित्य यात्रा का मार्ग दर्शन कर सकती है। हमारा प्रयास इतिहास लेखन का नहीं होना चाहिए अपितु इतिहास की विषयसामग्री बनने वाली रचनाओं और गतिविधियों का सर्वेक्षण करने का होना चाहिए।

सर्वेक्षण वस्तुत: रचनाधर्मिता की परंपरा का अनुसंधान है। सर्वेक्षण के बाद प्रवृत्तियों का रेखांकन लोकचित्त के सन्निकट की रचनाओं का परिष्करण और उसके माध्यम से लोक की भावात्मक सत्ता के यथार्थ की गवेषणा है। समाज की भावसत्ता देश-काल-परिस्थिति से विच्छिन्न नहीं है। अस्तु इस इतिहास के माध्यम से कला चेतना और देश-काल और घटनाओं के परस्पर अन्त:सूत्रों को खोजना है।

समीक्षा वस्तुत: रचना का पुनरीक्षण है और वे ही रचनाएँ प्राय: समीक्षित होती हैं जो अपने देश-काल का प्रतिनिधित्व करती हैं। अस्तु रचनाओं की प्रकाशित समीक्षाओं को आधार बनाकर साहित्य परंपरा का अनुशीलन भले ही द्वितीयक स्रोतों पर निर्भरता को प्रकट करता हो, पर वास्तविक रूप में वह लोकचित्त के निकट की रचनाओं की परंपरा को द्योतित करता है। इस अवधि में प्रकाशित सभी रचनाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन और अनुशीलन असंभव है। इस सीमा के कारण भी समीक्षा ग्रंथों को आधार बनाना हमारी विवशता हो सकती है।

सदी का उत्तरार्द्ध प्रचुर लेखन का समय है। जनमाध्यमों ने रचनाधर्मिता के लिए पर्याप्त अवसर उपस्थित किये है। जनमाध्यमों ने अपने-अपने लेखकों की एक बड़ी जमात तैयार की है। संपूर्ण रचनात्मक लेखन कर्म का समाकलन अत्यंत कठिन ही नहीं जटिल भी है, क्योंकि जनमाध्यमों ने रचनात्मक लेखन के दायरे में प्रोपोगण्डा, जुगुप्सा और कौतूहल को पर्याप्त रूप से समाविष्ट कर दिया है। इस दौर में वास्तविक रचनात्मकता और प्रोपोगेण्डा का फर्क करना असंभव हो गया है। यही कारण है कि कुछ पुस्तकें केवल बेस्ट सेलर के नाम पर ही बिक जाती हैं भले ही इसमें संवेदना और विचार के धरातल पर शून्यता हो।

इतिहास केवल घटनाओं का लेखा-जोखा नहीं बल्कि कार्यकारण संबधों के आधार पर घटनाओं-प्रतिघटनाओं की संगति निकालना है। कोई यह कहे कि इस समय और स्थान का वीडियो रख लिया जाए जो सच्चा इतिहास होगा। वीडियो से हम तथ्यों से अवगत हो सकते हैं, इतिहास बोध से परिचालित नहीं। इसी प्रकार जो कुछ भी प्रकाशित हो रहा है, उसकी सूची रखना एक बात है और जो साहित्य समय के धरातल पर ऊपर नीचे हो रहा है वह अलग है। देश काल सापेक्ष, संवेदना के धरातल पर जो रचनाएँ अपनी सार्थकता सिद्ध करती हैं वे ही कालजयी और उपलब्धि में ऐतिहासिक हो सकती हैं। साहित्येतिहास के संदर्भ में रचना और समय की संवेदना के कार्यकारण संबंध वाले अंत: सूत्रों को तलाशना है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि आलोचनाओं, बहसों, विचार विमर्शों और गतिविधियों के आलोक में रचना की सार्थकता का मूल्यांकन हो और उसकी पठनीयता, ग्रहणशीलता और प्रभाव को भी ध्यान में रखते हुए उसकी प्रासंगिकता तलाशी जाए। साहित्य का सर्वेक्षण इन दृष्टियों से अत्यंत आवश्यक है। इस सर्वेक्षण के आधार पर अन्वेषित कार्यकारण सूत्र साहित्येतिहास की सामग्री बनने की संभावना रखते है। प्रकाशित साहित्य की प्रवृत्ति और युग प्रवृत्ति का समेकित रूप अथवा दूसरे शब्दों में साहित्य में अभिव्यक्त युग प्रवृत्ति साहित्येतिहास की सामग्री हो सकती है। इसका अनुशीलन ही साहित्य का सर्वेक्षण है।

सन्दर्भ:-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1,1994
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राध्कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1996
3. हिन्दी गद्य का इतिहास, रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,1992
4. हिन्दी साहित्य का मौखिक इतिहास, नीलाभ,महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय प्रकाशन, वीधि, महाराष्ट्र, 2004
5. हिन्दी साहित्य का आध अतिहास, सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
6. हिन्दी साहित्य का उत्तरवर्ती काल, सत्यदेव मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, 2012

◆◆◆